ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(1): 355-358
www.allresearchjournal.com
Received: 04-11-2018
Accepted: 19-12-2018

डॉ. कमलेश कमल
पूर्व गवेषक, संस्कृत–विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत।

Corresponding Author:
डॉ. कमलेश कमल
पूर्व गवेषक, संस्कृत–विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत।

अथर्ववेदानुसार रोगनिवारण की पद्धतियाँ

डॉ. कमलेश कमल

प्रस्तावना

भैषज्य विज्ञान के क्षेत्र में भारतवर्ष प्राचीनकाल से ही अग्रणी रहा है। अपने अद्वितीय एवं अलौकिक चमत्कारों से विश्व को प्रभावित करते हुए आथर्वण औषधि–विज्ञान विकसित होकर आयुर्वेद के नाम से रूपान्तरित हुआ। आथर्वण महर्षियों द्वारा स्वास्थ्य के उपायों की ओर अधिकाधिक अन्वेषण स्वाभाविक रहा। वस्तुतः अथर्ववेद को जनसामान्य का वेद स्वीकार किया जाता है। इसमें समायोजित विषय जीवन के अनेक क्षेत्रों में अत्यन्त उपयोगी, सहायक एवं लाभकारी प्रतीत होते हैं। अथर्ववेद चिकित्सा–शास्त्र से सम्बद्ध तथ्यों का भण्डार है, इससे सम्बन्धित महर्षियों का रोग एवं औषधि विषयक ज्ञान इतना विशद् था कि चिकित्सा के साथ–साथ न केवल औषधियों की अपितु, बाह्य विद्युत्, शारीरिक विद्युत्, सूर्यरश्मि, जल, मिट्टी तथा मान्त्रिक, मानसिक आध्यात्मिक साधनयुक्त चिकित्सा में भी वे सिद्धहस्त थे। वैसे यह बात ध्यान देने योग्य है कि हमारे आदि चिकित्सक आध्यात्मिक, मानसिक एवं मान्त्रिक उपायों पर ही अधिक बल देते थे, जैसे शरीर के आन्तरिक एवं बाह्य रक्तस्रावों को मानसिक एवं मान्त्रिक शक्ति से रोकना, जो कि प्राचीन महर्षियों के शरीरशास्त्र के विस्तृत ज्ञान का भी परिचायक है। इसमें शरीर की नाड़ियों के विषय में विवेचन किया गया है। जैसे– [1] 'शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम्। अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत। परि वः सिकतावती धनर्बहत्य क्रमीत्। तिष्ठेतलयता सुकम्।।'

अथर्ववेद के काल में प्रयोग की जाने वाली उपचार–पद्धति पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि इसमें प्राकृतिक पदार्थों के द्वारा ही चिकित्सा–कार्य पर ज्यादा महत्ता दर्शायी गयी है। अधिकांश स्थानों पर पृथ्वी (मिट्टी) पर्वत, जल, नदी, स्रोत, मेघवृष्टि, अग्नि, विद्युत्, वायु, सूर्य, चन्द्रादि, प्राकृतिक पदार्थों से चिकित्सा का विधान है। उदाहरणार्थ– मूत्ररोग की चिकित्सा सूर्यरश्मि, जल एवं मानसिक शक्ति द्वारा बतायी गयी है। वैसे प्रमुख रूप से रोग–निवारण के तीन माध्यम ही दृष्टिगोचर होते है–[2] औषधि, जल तथा मन्त्रोच्चार। अथर्ववेद में अनेक प्राकृतिक पदार्थ भिन्न–भिन्न रोगों को दूर करने वाले ज्ञात होते हैं, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. पृथ्वी– पृथ्वी का तात्पर्य मिट्टी से है। मिट्टी सर्प–विष को खींच लेती है। बांबी की मिट्टी में नासूर का घाव भरने, नशीले स्थावर विषों को दूर करने, मूर्च्छा, भय एवं सर्प विष को दूर करने का गुण होता है। अथर्ववेद में बांबी की मिट्टी को 'आस्राव भेषज' कहा गया है। जैसे–[3] 'उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजम्। तदास्रावस्य भेषजं तदुरोगमशीशमत्।'
2. पर्वत– पर्वत पर दौड़कर चढ़ने से सर्पविष अतिशीघ्र उतर जाता है।
3. जल– तुरन्त घाव के भरने, निद्राक्षय, स्वानदोष एवं वंशानुगत रोगों को दूर करने का अनुपम गुण जल में विद्यमान है। क्षेत्रीयरोग को दूर करने के लिए जल का प्रयोग अथर्ववेद के एक मंत्र में बताया गया है। जैसे–[4] 'आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीव चातनीः। आपो विश्वस्य भेषजीस्तारस्त्वामुज्वन्तु क्षेत्रिययात्।।'

झरने का पानी हृदय शूल, हृदयदाह, नेत्रदाह आदि को नष्ट करता है। मेघवृष्टि का जल मूत्रावरोध एवं पित्ताशय के समस्त रोगों को दूर करता है। इस प्रकार अथर्ववेद में जल को सर्वव्याधिनाशक रसायन कहा गया है।

1. अग्नि– अग्नि तेज को मुख्य रूप से शीतरोग–नाशक कहा गया है। यह सर्वविष को जलाकर नष्ट करता है। कृमियों से दूषित आहार का शुद्धिकारक तथा मूत्रावरोध को दूर करने वाला है। गर्भवती के लिए सुख प्रसव कारक है।
2. विद्युत– विशेषकर भोजन में उत्पन्न कृमि दोष को दूर करती है एवं रुके हुए मूत्र का निस्तारण करती है। [5]
3. वायु– यह एक स्वास्थ्यप्रद रसायन माना गया है। यह सुख प्रसव में लाभाकारी है। रुके मूत्र का निःसारण एवं रोगों का नाश करता है। [6]

4. मेघ– गर्जन के साथ बरसता हुआ पानी एवं गर्जन के द्वारा सर्वविष को दूर करता है।
5. चन्द्र– चन्द्रमा की चांदनी रुके हुए मूत्र को बाहर निकालती है एवं क्षेत्रीय रोगों को दूर करती है।
6. सूर्य– सूर्य के माध्यम से हृदयरोग, हलीमक, कामला, अपची (गण्डमाला) और शिरोरोग की चिकित्सा का ज्ञान होता है। यह कृमि–नाशक है एवं सभी विषैले जन्तुओं का विष इससे दूर होता है। क्षेत्रीयरोग तथा अनेकानेक प्रकार के रोग भी सूर्योपासना, सूर्यस्नान, एवं सूर्य व्यायाम से दूर होते हैं। [7]

अथर्ववेद में रोगों का निदान बताने के साथ–साथ चिकित्सा की उन भिन्न–भिन्न पद्धतियों का भी विधान है जो बाद के आयुर्वेदीय ग्रन्थों में देखने को मिलता है। अर्थवेदीय रोग–निवारण पद्धतियों के कुछ प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं– आश्वासन चिकित्सा, उपचार चिकित्सा, सूर्यकिरण चिकित्सा, जल चिकित्सा, सोम चिकित्सा, हवन एवं अग्नि चिकित्सा, अग्नि चिकित्सा, वायु चिकित्सा, शल्य चिकित्सा।

1. आश्वासन चिकित्सा– इसमें सर्वप्रथम रोगी को आरोग्य प्राप्ति का पूर्ण आश्वासन दिया जाता है। रोगी के मनोबल को बढ़ाकर रोग निवारण में सहायता प्राप्त होती है। जैसे–[8] 'मा विभेर्नमस्यिसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा। निखोचमहं यक्षममडगेभ्यों अंगज्वरं त्व।।' पंचम काण्ड का सम्पूर्ण तीसवां सूक्त तो आश्वासन चिकित्सा का स्पष्ट उदाहरण है। इसके अनुसार अंग–अंग में व्याप्त ज्वर, हृदयरोग, राज्यक्ष्मादि रोग भी मन्त्र की वाणी से दूर हो जाते है। [9] अथर्ववेद के अधिकांश मन्त्रों में वैद्य औषधि जड़ी बूटी का प्रयोग करते हैं एवं सान्त्वना भी देते हैं।

एक स्थान पर उल्लिखित है मैं तेरे इस रोग के विषय में भलीभांति जानता हूं, अमुक उपाय या औषधि से तुम्हारे रोग को नष्ट करके तुम्हें स्वस्थ्य कर दूंगा। [10] द्वितीय काण्ड के दसवें सूक्त में भी वैद्य पूर्ण आत्मविश्वास एवं सामर्थ्य के साथ रोगी को उसके रोग निवारण व आरोग्य प्राप्ति का विश्वास दिलाता प्रतीत होता है। [11]

अथर्ववेद 20/86/7 से तो स्पष्ट ही है कि वैद्य मृत्यु के समीप गए रोगी को भी मृत्यु के मुख से छुड़ाने का सामर्थ्य रखता था। 'यदिवाक्षितायुः' [12] इसी प्रकार का उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है। [13] विष का प्रभाव तक वैद्य के वाक्सामर्थ्य व प्रभावशीलता से निवारण होता हुआ प्रतीत होता है। जैसे–[14] 'वाचं विषस्य दूषणी तामितों निरवादिषम्...'

पुरुषरोग, स्त्रीरोग एवं बालरोग लगभग सभी में इस पद्धति का कुछ सीमा तक आश्रय लिया गया है।

2. उपचार चिकित्सा– रोगी के साथ व्यवहार के विषय में चार बातों पर विशेष रूप से बल दिया गया है–

क.– रोगी के आत्मीयजन तथा शुभचिंतक ही पास रहें।

ख.– वर्तमान सम्बन्धियों के प्रति रोगी के हृदय में प्रेम उत्पन्न करना एवं दिवंगत सम्बन्धियों का स्मरण न करने देना।

ग.– रोगी की औषधि माता–पिता, भाई–बहन ही तैयार करें।

घ.– सबसे महत्वपूर्ण बात यह निर्दिष्ट है कि 'प्रत्येक सेवस्य भेषजम्' अर्थात् औषधि को आत्मभाव से ग्रहण कर उसका सेवन करें। तदतिरिक्त उपचार दो प्रकार का होता है–

1. मणि बन्धनादि युक्त उपचार जो कि भेषज कहलाता है।
2. जड़ी बूटी आदि से युक्त उपचार जो कि औषधि कहलाता है।

वेदों में त्रिधातुवाद की मान्यता है। कफ, पित्त और बात इन तीनों धातुओं की विषमता से रोग होते हैं। ऋग्वेद में भी इसी प्रकार का विवरण प्राप्त होता है। [15] अथर्ववेद में भी अभुज, वातज, शुष्म ये तीन प्रकार के रोग बताए गए हैं। [16] इनमें से वातज स्पष्ट है, अभुज का अर्थ है कफ जनित एवं शुष्म का अर्थ पित्तज से है। ऐसा सायण के मतानुसार ज्ञात होता है। चरक ने भी तीन प्रकार के रोगों का वर्णन किया है। जैसे– [17] 'अतः स्त्रिविधा व्याधयः प्रादुर्भवन्ति। आग्नेयाः सौम्या वायव्याश्च।।' वस्तुतः जब ये निश्चित अनुपात से अधिक हो जाते हैं या कम हो जाते हैं तो नाना व्याधियाँ उत्पन्न होने लगती हैं।

पिप्पली औषधि का उल्लेख अथर्ववेद में बात रोग के सन्दर्भ में आया है। [18] पित्त को 'पित्त' शब्द से ही कहा गया है। सुश्रुत में अग्नि और पित्त को एक ही माना गया है। कफ को 'कफ' या 'बनास' शब्द से कहा गया है। गिलटी रोग कफ के कारण उत्पन्न होने वाला कहा गया है तथा उसकी चिकित्सा के लिए 'चीपुद्रु' नामक औषधि निर्दिष्ट है, जो अज्ञात है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह सम्भवतः शिफा या जटामासी है। कफ रोग के ये विशेषण जैसे हड्डियों में असहनीय पीड़ा उत्पन्न करने वाला, शरीरिकबल नाशक इत्यादि कफ रोग के पूर्ण परिचायक है। [19]

अथर्ववेदीय रोग निवारण सम्बन्धी उपचारों में तीनों के कारण होने वाले रोगों की चिकित्सा है। इन तीनों की समानता, विषमता को देखने समझने के बाद ही उसके अनुसार उपचार किया जाता है।

मणि बन्धनादि युक्त उपचार– अथर्ववेद में वर्णित मणियाँ मात्र रत्न की ही नहीं अपितु औषधि वनस्पति से निर्मित, वनस्पतियों के रस से सम्पुटित भेषज का महत्वपूर्ण एवं शास्त्रोक्त विषय है, अन्धविश्वास मात्र नहीं। औषधी वनस्पति के रस से निर्मित 'मणि' के गुण के विषय में विस्तृत जानकारी एक मन्त्र से मिलती है। जैसे–[20] 'वैयाघ्रो मणिर्वीरूधां त्रायमणेभिशस्तिपाः। अमीवाः सर्वारक्षास्यप हन्त्वधि दूरमस्पद्।।' औषधि निर्मित ये गोलियां तीव्र गंध के कारण रोगाणुओं से मनुष्य को बचाती है।

अथर्ववेद में जंगिड मणि से लेकर पलाश मणि तक 22 मणियों का उल्लेख है, जिनका प्रयोग भिन्न–भिन्न बीमारियों के निवारण के लिए किया जाता है। औषधि चिकित्सा– व्याधि निवारण का दूसरा प्रकार औषधि–चिकित्सा के अन्तर्गत आता है। अथर्ववेद में लगभग 289 औषधियाँ उल्लिखित हैं। इनमें से 94 विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। इनका प्रयोग खाने व लगाने के लिए किया जाता था और मिश्रित रूप से न होकर स्वतन्त्र रूप से किया जाता था।

1. सूर्य किरण चिकित्सा– सूर्य की किरणें अत्यन्त लाभकारी है ये अनेक व्याधियों के रोगों के विष को शरीर से बाहर खींच लेती है। सूर्य किरणों के द्वारा रोग क्रिमियों के नाश का वर्णन नानारोगों के निवारण के संदर्भ में मिलता हैं। चतुर्थ काण्ड के 37वें सूक्त में, द्वितीय काण्ड के 31वें तथा 32वे सूक्त में, वाजीकरण प्रसंग में विष निवारण इत्यादि के संदर्भ में सूर्य किरणों के माध्यम से चिकित्सा का उल्लेख अनेक मंत्रों में मिलता है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के 22वें सूक्त में सूर्यकिरण चिकित्सा का विशद् विधान है, जिसमें हृदयरोग एवं पाण्डु कामला रोग के उपचार के लिए सूर्य की किरणें नितान्त उपयोगी बताई गयी है। अथर्ववेदानुसार कृमिरोग, बालरोग, पुरुषरोग (नपुसंकता निवारण आदि), विष चिकित्सा, हृदयरोग एवं पाण्डु कामला रोग, मूत्रावरोध, क्षेत्रीयरोग आदि रोगों के उपचार हेतु सूर्य की किरणें विशेष लाभकारी हैं। वेदों में स्वास्थ्य लाभ हेतु सूर्य किरणों को दैनिक जीवन में प्रतिदिन निरन्तर ही महत्त्वपूर्ण माना गया है। प्रातः कालीन आतप में स्वेदन, स्नानादि से शरीर के विभिन्न रोगों का नाश होता है। [21]

2. जल चिकित्सा– अथर्ववेद के अनुसार ''जल'' रोग दूर करने वाला एवं जीवन शक्ति देने वाला अमृत कहा गया है। सम्भवतः इसलिए वैदिक निघन्टु में इसे 'अमृत' का नाम दिया गया है। [22] वृष्टि का जल, झरनों का जल, एवं नदी प्रवाह के जल में औषधीय गुण विद्यमान हैं। भूमिगत जल राशि रोग को हरने वाली है। इस जल राशि से युक्त मिट्टी सभी प्रकार के स्रावों एवं

अतिसार आदि रोगों को पूर्णतया नष्ट करने वाली ज्ञात होती है। [23] हिमयुक्त पर्वतों से बहती हुयी जलधाराओं में विभिन्न प्रकार के गुणों के एकत्र होकर मिल जाने से हृदयरोग नाशन का एक विशेष गुण आ जाता है। [24] आंखों, एड़ियों एवं पैरों के अग्र भाग में जलन पैदा करने वाले रोग को जलधाराएं शीघ्र दूर कर देती है। [25] इनके लिए आया हुआ 'सुभिषक्तमाः' विशेषण इनकी उपयोग्यता एवं रोग निवारण गुण को पूर्णरूपेण स्पष्ट करता है। बाण लगे हुए घायल व्यक्ति के उपचार हेतु यह उत्तम औषधि है। [26] अथर्ववेद के अनुसार वायु, सूर्य, किरण आदि दिव्य पदार्थ समुद्र से उठकर आकाश में जिस स्वच्छ जल को चारों ओर सींचते हैं उस शुद्ध जल के द्वारा विष को दूर किया जा सकता है। [27] शरीर में आए वंशानुगत रोगों के लिए भी जल को सर्वरोग नाशक कहा गया है। [28] सूक्त–5 में भी जल के प्रति अपने में निहित औषधियों से व्याधि निवृत्त करने की प्रार्थना है। भरू प्रदेश का जल, जल सम्पन्न प्रदेश का जल, खोदे हुए कुंए आदि का जल, घड़े में संचित जल तथा वर्षा आदि के जल को सुखदायक कहा गया है। [29]

3. सोम चिकित्सा– अथर्ववेद में सोम चिकित्सा या होम्योपैथी का उल्लेख भी मिलता है। जो भी रोगकीट या विषाणु रोगी को पीड़ित करता है, उसी के समजाति वाले रोगाणु के अंश से रोगकारी कीटाणु का विनष्ट होना सोम चिकित्सा है। जैसे–[30] 'दिवा मा नक्तंयतमो ददम्भक्रत्याद् यातूनां शयने शयानम्। तदात्मना प्रजयापिशाचा– वियातयन्तमगदोंश्यस्तु।।' सर्वविष चिकित्सा के सन्दर्भ में भी एक स्थान पर विषधरों के विष की चिकित्सा उन्हीं के विष से होने का उल्लेख है। आधुनिक काल में 'विषस्य विषमौषधम्' सिद्धांत के अनुसार कुत्ते के काटने पर उसी के लार से बने 'सीरम' द्वारा इन्जेक्शन देकर उसकी चिकित्सा की जाती है।

4. हवन एवं अग्नि चिकित्सा– प्राचीन काल में हवन आदि अपना विशेष महत्व रखते थे। ऐसा माना जाता था कि हवन से उठने वाले गुग्गल के धुएं को सूंघने वाले के समीप से व्याधियां अतिशीघ्र पलायन कर जाती है। [31] राजयक्ष्मा आदि रोगों को दूर करने के लिए गुग्गल के हवन की चिकित्सा अत्यंत लाभकारी बतायी गयी है। [32] अथर्ववेद के अनुसार हवन में बहुत शक्ति होती है इसलिए अग्नि में इन्द्रादि देवों को हवि प्रदान करके उनसे आरोग्य प्राप्ति की कामना की गयी है एवं बड़े से बड़े साध्य एवं असाध्य सभी रोगों को दूर करने की प्रार्थना की गयी है। [33] यज्ञ आदि में हवन किए जाने का अनिवार्य रूप से विधान था। यह यज्ञ प्रायः ऋतुओं की संधियों में किए जाते थे ताकि ऋतु परिवर्तन के कारण होने वाले रोग दूर हो सकें। [34]

5. अग्नि चिकित्सा– अग्नि भेषज रूप है। यह प्रमुख रूप से शीत की औषधि है। यजुर्वेद में भी इसकी पुष्टि होती है। [35] अथर्ववेद में शीत रोग को दूर करने के लिए अग्नि चिकित्सा का महत्व बताया गया है। अथर्ववेद के विभिन्न काण्डों के अनेक सूक्तों में अग्नि द्वारा चिकित्सा का विधान है। अनेक मंत्र देवता रूप अग्नि के लिए भी समर्पित है वाजीकरण प्रसंग में भी प्रार्थना की गयी है कि इस पुरुष को शक्तिशाली एवं संतानोत्पादन के योग्य बना दो। अग्नि के प्रयोग से ज्वर का भी नाश होता है। अग्नि द्वारा विभिन्न जाति के रोग कीटों के नाश का वर्णन है चाहें वे रोगाणु जल में हो, भोजन में हो या दुग्धादि में हो। गर्भवती के सुख–प्रसव तथा मूत्रारोध में भी अग्नि चिकित्सा के प्रयोग का वर्ण है। अग्नि की प्रकाशक शक्तियां उसकी ज्वालाएं है, जिसके द्वारा पुरुष को यक्ष्मादि के कष्ट से मुक्त करके उसके प्रति स्वस्थ एवं चिरायु होने की प्रार्थना है। [36]

6. वायु चिकित्सा– अथर्ववेद के अनुसार वायु एक स्वास्थ्यप्रद रसायन है। अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड के 13वें सूक्त में रोग विनाशक रस को शरीर के चारों ओर अंग–अंग में फैलाने वाली वायु के भेषज रूप का विशद विधान है। जिस प्रकार सिंधु से चलकर पृथ्वी पर अन्नोत्पादक एवं रोगनाशक दो प्रकार की वायु प्रवाहित होती है उसी प्रकार शरीर में प्राण और आपान ये दोनों वायु सिंधु रूप हृदय एवं फुफ्फुस प्रदेश से शरीर के अंग–अंग तक गति उत्पन्न करते हैं। [37] इन दोनों में एक शरीर को बल प्रदान करने में समर्थ है तो दूसरा मलिन अंश को मूत्र एवं स्वेद रूप में बाहर करने वाला है। अर्थात् उपान वायु का अर्थ है रक्त के मलिन अंश को स्वेद, मूत्रादि के रूप में शरीर से बाहर कर देना। वायु के लिए 'विश्वभेषज' शब्द का प्रयोग है, जिसका तात्पर्य है समस्त प्राणियों के सम्पूर्ण रोगों की एक मात्र चिकित्सा वायु ही अंतरिक्ष में मेघ को विस्तृतकरता है एवं अन्न, वृक्ष तथा औषधियों में वर्षा के जल को सींचता है। [38] इसके अतिरिक्त अनेक मंत्रों में वायु देवता से आरोग्य एवं दीर्घायु प्रदान करने की प्रार्थना की गयी हैं। वायु के लिए कहा गया है तुम अंतरिक्ष में विचरण करते हुए अपनी शक्ति से शत्रु (रोगाणुरूपी) को विनष्ट कर दो जो हमसे द्वेष रखते हैं उन्हें शोकाकुल कर दो। जैसे– [39] 'वायो यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योइस्मान् द्वेष्टि यं वयः द्विष्मः।।'

7. शल्य चिकित्सा– अथर्ववेदीय रोग–निवारण पद्धतियों में शल्य चिकित्सा के उदाहरण अपेक्षाकृत कम हैं। कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में शल्य चिकित्सा के उदाहरण मिलते है जैसे मूत्रावरोध में शरशलाका द्वारा मूत्र का निःसारण, सुख–प्रसव के लिए योनि–भेदन, जल धावन के द्वारा व्रण–उपचार, रक्त–स्राव निवृव्यर्थ, धमनी बंधन इत्यादि।

मूत्रावरोध– यदि मूत्राशय की पार्श्ववर्ती गवीनी (सरकण्डे अथवा लोहे की शलाका) का प्रयोग निर्दिष्ट है। (यूरेटरस या वृक्क) में यदि मूत्र रुका हो तो शस्त्रकर्म के द्वारा मूत्र का निःसारण किया जाता था। [40] मूत्र रोग से पीड़ित मनुष्य के लिए शर (सरकण्डे अथवा लोहे की शलाका) का प्रयोग निर्दिष्ट है।

गर्भाशय भेदन– प्रसव के ज्यादा विलम्ब हो जाने पर शल्य चिकित्सा अनिवार्य हो जाती थी। प्रसूति के समय कुछ ऐसी परिस्थितियां आती थीं जबकि माता को जीवित रखने के लिए दुर्लक्ष करना पड़े या शिशु को जीवित रखने के लिए माता के जीवन की उपेक्षा की जाए ऐसे समय में शिशु को जरायु से शीघ्र अलग कर दिया जाता था। ताकि उसके जीवन की रक्षा की जा सके। इसी प्रकार का विवरण सुश्रुत के ग्रन्थ से भी मिलता है। [41]

अपची वेधन– अपची रोग के लिए वेदन एवं छेदन उपचार का निर्देश है अपची अर्थात न पंकी गाठों को शल्य क्रिया के माध्यम से ठीक करने का उल्लेख है। [42] जिसमें कष्टसाध्य गण्डमालाओं को रूद्रात्मक शर अथवा अगस्त्य वृक्ष की जड़ से वेधने का विधान है। अपची गांठों में दोष की अधिकता व न्यूनता के आधार पर तीन भेद मिलते हैं–

1. जिसमें मवाद अधिक हो, 2. जिसमें कम हो एवं 3. जिसमें सामान्य हो। इन सभी मे शल्य क्रिया के माध्यम से फुन्सी के समान काट डालने का निर्देश है।

रक्तस्राव निवृव्यर्थ धमनी बन्धन–शुद्ध तथा अशुद्ध रक्त की लाल एवं नीले रंग की दो रक्त वाहिनियों के स्वस्थ्य रहने की कामना की गयी है। रक्त स्राव के लिए पट्टी बांधने एवं रेतभरी थैलियों से दबाव देने का उल्लेख है। रोग के कारण विकृत हो जाने वाली स्त्री सम्बन्धी दोषयुक्त शिराएं इस चिकित्सा कर्म से स्वस्थ्य

हो जाए। इनमें से अधिक रक्तस्राव न हो। इसके पश्चात धमनी के लिए प्रार्थना की गयी है कि शरीर के अधोभाग में रहने वाली शिरा शस्त्रादि से होने वाले रक्तस्राव को रोक दो।

इसके अतिरिक्त क्षत, विद्रधि, छिन्न–भिन्न, व्रण आदि रोगों की भी चिकित्सा का उल्लेख है। टूटी या कटी अस्थियों को जोड़ने, जुड़े हुए या कटे हुए अंग को ठीक करने तथा पृथक हुए मांस मज्जा को ठीक करने का भी उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है। एक मंत्र में व्रण पकाकर उससे पूयस्राव करने का भी उल्लेख है। विष को भी शल्य से दूर करने का स्पष्ट उल्लेख है। [43]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हजारों साल पहले अथर्वसंहिता आयुर्वेद की दृष्टि से अत्यंत समृद्धिशाली थी। वर्तमान समय में भी यह रोग निवारण पद्धतियां अत्यंत लाभकारी है। यद्यपि आज चिकित्सा विज्ञान काफी प्रगति कर चुका है, तथापि प्राचीन काल की इन रोग–निवारण पद्धतियों को नजरअंदाज नही किया जा सकता। अपनी मौलिक विशेषताओं के कारण यह आज भी यह चिकित्सकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रही हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. अथर्ववेद– 1.17.3–4
2. अथर्ववेद– 2.3.4
3. अथर्ववेद– 3.7.5
4. अथर्ववेद, पृ.– 160
5. अथर्ववेद, पृ.– 160–161
6. अथर्ववेद, पृ.– 161
7. अथर्ववेद– 5.30.8, 20.96.7; 8.2.24
8. अथर्ववेद– 5.30.9
9. अथर्ववेद– 1.22.1
10. अथर्ववेद– .2.10.1
11. अथर्ववेद– 20.86.7
12. ऋग्वेद– 10.161.1; 10.161.2; 10.161.3
13. अथर्ववेद– 4.6.2
14. ऋग्वेद– 1.34.6
15. अथर्ववेद– 1.12
16. चरक अध्याय–– 1.4
17. अथर्ववेद– 6.109.3
18. अथर्ववेद– 6.14.1
19. अथर्ववेद– 8.7.14
20. अथर्ववेद– 8.7.14
21. अथर्ववेद– 1.12, 1.4.4
22. अथर्ववेद– 3.3.4
23. अथर्ववेद– 6.24.1
24. अथर्ववेद– 6.24.2
25. अथर्ववेद– 6.57.2
26. अथर्ववेद– 6.100
27. अथर्ववेद– 3.7.5
28. अथर्ववेद– 1.5.4
29. अथर्ववेद– 1.6
30. अथर्ववेद– 5.29.9
31. अथर्ववेद– 19.38
32. अथर्ववेद– 19.38.1, .11.2
33. अथर्ववेद– 3.11.1
34. गोपथ ब्राह्मण 1.19
35. वाजसनेयि–संहिता– 23.10
36. अथर्ववेद– 5.29.3
37. अथर्ववेद– 4.13
38. अथर्ववेद– 4.27.3
39. अथर्ववेद– 2.20.1
40. अथर्ववेद– 1.3
41. सुश्रुत, चिकित्सास्थान अध्याय– 7.30.38, 15.12–13
42. अथर्ववेद– 7.74.2
43. अथर्ववेद– 4.6.5